शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसंबर 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

कुमाउनी लोक नृत्य-गीत 'झोड़ा' में सामाजिक चेतना के स्वर

दीपक चन्द्र सिंह मेहता (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग
एम.बी.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी
नैनीताल (उत्तराखण्ड), भारत

शोध संक्षेप

उत्तराखण्ड में दो मण्डल हैं कुमाऊँ और गढ़वाल। गढ़वाल मण्डल में सात तथा कुमाऊँ मण्डल में छः जनपद हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका विशेष महत्व है। पुराणों में गढ़वाल को केदार खण्ड तथा कुमाऊँ को मानस खण्ड नाम से जाना गया है। सांस्कृतिक रूप से यह एक समृद्ध क्षेत्र है। यहाँ प्रमुख रूप से झोड़ा (झ्वड), चाँचरी, छपेली आदि लोकनृत्य-गीत प्रचलित हैं। झोड़े का आयोजन प्रति वर्ष चैत्र मास में बारी-बारी से प्रायः सभी के घर में होता रहा है। इसके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर भी इसका अयोजन किया जा सकता है। झोड़े अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं, जिन्होंने यहाँ के विभिन्न जन आन्दोलनों एवं सामाजिक चेतना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्रस्तावना

लोकगीत मन की सरल अभिव्यक्ति हैं। उत्तराखण्ड में झोड़ा, चाँचरी, न्योली, छोपाटी, चैन झुमेला, बसंती, जग्गार, बाजुबंद, खुदेड़, छुरा आदि विविध लोकगीत प्रचलित हैं। उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति बहुत समृद्ध और विकसित है। लोक गीत और लोक नृत्य यहाँ घर-घर में प्रचलित हैं, विषेष कर यहाँ के ग्रामीण जीवन में लोक उत्सव के प्रति बहुत उत्साह दिखाई पड़ता है। यहाँ प्रचलित प्रमुख लोक नृत्य-गीतों में झोड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पहले जब मनोरंजन के साधन कम थे तब लोक गीत और लोक नृत्यादि ही यहाँ मनोरंजन के साधन हुआ करते थे। टेलीविजन और आधुनिक जनसंचार के मनोरंजक साधनों के उपलब्ध होने के बाद सामूहिक उत्सवों का प्रचलन कम होता जा रहा है किन्तु इसकी उपयोगिता आज भी उतनी ही महसूस की जाती है।

झोड़ा

झोड़ा उत्तराखण्ड का एक प्रमुख लोक नृत्य-गीत है। इसमें स्त्री-पुरुष वृत्ताकार घेरे में दो समूह में बँटकर एक-दूसरे की कमर अथवा कंधें में हाथ डालकर संतुलित पद-संचालन के द्वारा कदम-ताल मिलाते हुए नृत्य करते हैं। बीच में हुड़का वादक झोड़े की पहली पंक्ति को गाता है, उसके बाद अन्य लोग भी उसे दोहराते हैं। बीच-बीच में जोड़ भी चलते रहते हैं। "गायन हेतु परस्पर हाथ जोड़कर दो दलों द्वारा गाये जाने वाले गीत 'झोड़ा' कहलाते हैं। इस प्रकार झोड़ा, जोड़ा शब्द गीत-शैली की विशिष्टता को स्पष्ट करते हैं। 'झोड़ा' कुमाउनी के सामूहिक नृत्य गीत हैं। स्थान भेद के आधार पर इन्हें चाँचरी, खेल, हथजोड़ा और भैनी भी कहा जाता है।"1

प्रो. देवसिंह पोखरिया ने झोड़ां के दो रूप बताये हैं-1. मुक्त झोड़े और 2. प्रबंधात्मक झोड़े। मुक्तक झोड़े गाँव-गाँव व घर-घर में गाये जाते हैं। ये कम अवधी में गाये जाने वाले गीत हैं। प्रबन्धात्मक झोड़े मेले आदि के अवसर पर गाये

जाने वाले लम्बी अवधी के गीत होते हैं। सुप्रसिद्ध लोक साहित्यकार जुगल किशोर पेटशाली ने अपनी पुस्तक 'कुमाउनी लोकगीत' में झोड़ों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

1. भ्वीन
2. झुमकिया झोड़ा
3. सामान्य प्रचलित झोड़ा2

1. भ्वीन

मंगल अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को भ्वीन कहते हैं। इस प्रकार के झोड़े मंदिरों में अधिक गाये जाते है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

ओहो- गोरी गंगा भाग्रती को के भलो रेवाड़।
ओहो- खोल् दे माता खोल् भवानी, धरम केवाड़।
ओहो- के ल्यै रैछै भेट पखोवा, म्यारा दरबार।
अयहय- द्वी जौंया बाकरा ल्यैरूँ, तेरो दरबार।
ओहो- खोल् दे माता खोल् भवानी, धरम केवाड़।
अयहय- के ल्यै रैछै भेट पखोवा, म्यारा दरबार।
ओहो- द्वि ज्वाड़ा बाकरा ल्यैरूँ, तेरो दरबार।
ओहो- खोल् दे माता खोल् भवानी, धरम केवाड़।
अयहय- के ल्यै रैछै भेट पखोवा, म्यारा दरबार।
ओहो- द्वि ज्वाड़ा निसाण ल्यैरूँ, तेरो दरबार।
ओहो- खोल् दे माता खोल् भवानी, धरम केवाड़।
अयहय- के ल्यै रैछै भेट पखोवा, म्यारा दरबार।
ओहो- सुनु को छत्र ल्यैरूँ, तेरो दरबार।
ओहो- खोल् दे माता खोल् भवानी, धरम केवाड़।

2. झुमकिया झोड़ा

यह विलम्बित गति से गाये जाने वाला झोड़ा है। यह कुछ विशेष स्थानों में ही गाया जाता है। इसके बोल इस प्रकार हैं-

'बौला शेरू, ओ शेरू रे,
कम्पासी..... तीलै धारो,
बौला....शेरू ओ शेरू रे.... (तीन टुकड़ों में बंटी हुई यह एक ही पंक्ति है)
बौला.....खीमा, ओ खीमावे,
न्यौराली खीमा तीलौ धारौ,
बौला खीमा दातुलै की
धारा खीमा बीच गंगा छोड़ि गै छे
नै वारा, नै पारा खीमा तीलै धारौ
बौला खीमा तीलै धारौ
बौला शेरू ओ शेरू रे
कम्पासी ....तीलै धारौ बौला।'3

3. सामान्य प्रचलित झोड़ा

यह झोड़ा कई क्षेत्रों में प्रचलित है। इस झोड़े में कलाकार नृत्य करते हुए इसे आगे बढ़ाते हुए कितना ही लम्बा खींच लेते हैं। यह झोड़ा नृत्य जब समापन की ओर होता है तब इसकी गति बढ़ जाति है। प्रायः धोंस्याला के साथ यह समाप्त हो जाता है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

ओहो तली दुकाना ग्व्व मिसिरी, मली दुकाना च्युड़ा।
अयहय के करूँ सासु चुड़ि चरेवा, रेवती बौज्यू बुड़ा।

झोड़ों का प्रचलन सामाजिक जीवन में अब कम होने लगा है, अब यदा-कदा ही इनका आयोजन किया जाता है। लोक कलाकारों और सांस्कृतिक दलों द्वारा अपनी आजीविका के लिए इन्हें बचाये रखना जरूरी हो गया है, इसी कारण आज इनका उचित संरक्षण होता दिखलाई पड़ रहा है।

उपर्युक्त आधार पर हम झोड़ों का वर्गीकरण इस प्रकार भी कर सकते हैं-

1. धार्मिक झोड़े
2. समसामयिक झोड़े
3. श्रृंगारिक झोड़े
4. सामान्य झोड़े

झोड़ों में सामाजिक चेतना के स्वर

झोड़ों में सामाजिक चेतना के स्वर बहुत ही प्रभावशाली रहे हैं। जब भी कोई घटना घटित होती है झोड़े गाने वाले उसी क्षण आशुकवि के रूप में एक नये झोड़े का सृजन कर लेते हैं। "झोड़ा न केवल धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक मुद्दों को अपनी विषय वस्तु बनाते हैं, बल्कि वे समाज की तमाम विकृतियों को भी सामने लाने का काम करते हैं जो समय-समय पर आ जाती हैं। सामाजिक बदलाव और विकास के रूप भी झोड़ों में देखे जा सकते हैं। सामूहिक अभिव्यक्ति और उस पर प्रतिकार के स्वर इनमें समाहित रहते हैं।"4

झोड़ों में सामाजिक चेतना सूक्ष्म रूप से प्रकट होकर व्यापक होती चली जाती है। किसी विशेष स्थान पर कोई सामान्य सी घटना पर बना झोड़ा भी स्वर पकड़ते ही पल भर में चारों दिशाओं में दौड़ पड़ता है। देश के किसी भी कोने में होने वाली हलचल की प्रतिक्रिया झोड़ों के रूप में पहाड़ के शिखरों में दौड़ पड़ती है। ऐसी ही एक घटना है जब एक युवक अपने घर से बहुत दूर कश्मीर में पाकिस्तान से लगी सीमा पर युद्ध लड़ रहा होता है, गाँव में उसकी पत्नी उस युद्ध के परिणाम से भयभीत होकर अपने पति की चिंता करते हुए उसके वियोग में तड़प उठती है, तब उसे सांत्वना देते हुए लोग इस प्रकार भावना प्रकट करते हैं-

ये कुन्दन कश्मीरै लड़ाई, लड़ी रैफला लिबेरा
ओ दीपा पराणी कौ घाता, करौ य माया दिबेरा
ये कुन्दन बौडर लड़ाई, लड़ी देशक खातिरा
ओ दीपा नौ फ्यरा लड़ाई, लड़ी य त्यरा खातिरा
ये कुन्दन कश्मीरै.....
ये दीपा परायी आपणा, न्हैती कलेजी दिबेरा
ओ दिपा पराणी कौ घाता, करौ य माया दिबेरा
ये कुन्दन बौडर लड़ाई, लड़ी देशक खातिरा
ओ दीपा नौ फ्यरा लड़ाई, लड़ी य त्यरा खातिरा

अर्थात उपर्युक्त गीत (झोड़ा) में एक ग्रामीण युवक कुन्दन कश्मीर के सीमांत में देश की सुरक्षा में लगा हुआ है। चिंता में डूबी उसकी पत्नी दीपा को ग्रामीण धैर्य बंधाते हुए कह रहे हैं कि- कुन्दन इस देश की सुरक्षा के लिए गया है। वह निहत्था नहीं है बल्कि उसके हाथ में राईफल है, इस लिए डरने की क्या आवश्यकता है ? वह तुझसे बहुत प्रेम करता है लेकिन इस मातृभूमि की रक्षा के लिए वह उसे भी बलिदान करके सीमा पर लड़ रहा है। ऐसी लड़ाई वह प्रथम बार नहीं लड़ रहा है। इससे पहले भी वह अब तक नौ बार शत्रुओं से लोहा ले चुका है, तू व्यर्थ में चिंता मत कर। हे दीपा! इस समाज में यदि अपनी जान की बाजी लगाकर भी किसी के लिए कुछ कर दो तो भी वह अपना नहीं होता, लेकिन तू अपने पति कुन्दन को देख उसने अपने प्रेम को भी राष्ट्र प्रेम के लिए बलिदान कर दिया। इस लिए तू चिंता मत कर वह विजयी होकर घर लौट आयेगा। कुन्दन ने सीमा पर नौ बार जो लड़ाई लड़ी है वह देश और तेरे लिए लड़ी है, यदि देश सुरक्षित नहीं रहता तो हम-तुम कहाँ भी कहाँ सुरक्षित रहते ? इसलिए तू चिंता मत कर, वह युद्ध में विजय होकर शीघ्र घर लौट आयेगा। इस लोकगीत में युगल प्रेम के साथ-साथ देश प्रेम की अमिट छाया भी दिखलाई पड़ रही है। मन का अंतर द्वन्द्व, विषम परिस्थिति एवं राष्ट्र और युगल प्रेम की झलक इस झोड़े में जनचेतना की एक अदभुत अनुभूति है।

पर्वतीय क्षेत्रों की अधिकांश खेती उपराऊ होने के साथ ही वर्षा पर ही निर्भर होती है। सेरे (सिंचित होने वाले खेत) बहुत कम होते हैं, जिस कारण प्रत्येक ग्रामीण के लिए इस प्रकार के खेत किसी

अनमोल खजाने से कम नहीं होते हैं इसीलिए हर किसान अपने खेतों के प्रति सजग और सतर्क रहता है। एक ऐसा ही किसान जो अपनी पत्नी से खेतों में जाते समय सावधानी बरतने के लिए कह रहा है- एक प्रेमी अथवा पति अपने खेतों के प्रति बहुत सजग और सतर्क रहता है। अपनी फसल की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए वह अपनी पत्नी से को सावधन करते हुए कह रहा है-

ओ कमला तालि स्यारी झन जैये, कमला ग्यों बाली टूटेली

ओ शेरू हरिया खेतों मा शेरू, ग्यों बाली टुटेली।

इस लोकगीत (झोड़े) में शेरू नामक एक व्यक्ति अपनी पत्नी कमला को समझाते हुए कह रहा है कि अब उन्हें बहुत सावधानी बरतनी होगी क्योंकि खेत में गेहूँ की बालियाँ उग गई हैं। निचले सेरों (समतल खेत के निचले छोर) में घास काटने मत जाना क्योंकि वहाँ गेहूँ की जो बालियाँ लगी हैं वे टूट जायेंगी। तब उसकी पत्नी उसे उत्तर देते हुए कह रही है कि वह ठीक कह रहा है अब उन्हें अतिरिक्त सावधानी बरतने की आवश्यकता है। यदि वह खेतों की ठीक से देखभाल नहीं करेंगे तो हरे-भरे खेतों में गेहूँ की बालियाँ टूट जायेंगी तो उन्हें भारी क्षति होगी।

इसी प्रकार पर्यावरण चेतना भी झोड़ों में देखी जा सकती है। उत्तराखण्ड में गौरा देवी जैसी क्रांतिवीर महिलाएँ लकड़ी तस्करों से उन्हें बचाने के लिए पेड़ों से लिपट जाती हैं। गौरा देवी वह वीर साहसी महिला थी जिनके नेतृत्व में वर्ष 1974 में उत्तराखण्ड के चमोली जनपद में विष्व विख्यात चिपको आन्दोलन हुआ। पर्यावरण बचाने की यह एक बहुत बड़ी लोक संस्कृति का उदाहरण है। इसी संस्कृति के प्रभाव से कारण यहाँ पर एक महिला को बाँज (ओक) के पेड़ न काटने की चेतावनी दी गई है, क्योंकि बाँज के पेड़ जलस्रोत के लिए बहुत उपयोगी होते हैं-

सरकारि जंगल लछिमा, बाँजा नि काट लछिमा बाँजा नि काटा

हमरो जंगल लछिमा, नासा नि कर लछिमा नासा नि करा

झुपराली डाली लछिमा, नासा नि कर लछिमा नासा नि करा

हमरो पहाड़ लछिमा, नासा नि कर लछिमा नासा नि करा

हाई रे बाँजा बुरूसी, तिलै धरो बोला लछिमा तिलै धरो बोला

फूल बुरूसी को फूला, ते फूला देेवी चढ़ूँला ते फूला देवी चढ़ूँला

पधानू की ब्वारि लछिमा, बाँजा नि काट लछिमा बाँजा नि काटा

काटि जाला धुर जंगला, पड़ला अकाला लछिमा पड़ला अकाला

पाणि पाणि पाणि कनै, तिसाला पहाड़ा लछिमा तिसाला पहाड़ा

सरकारी जंगल लछिमा, बाँजा न काट लछिमा बाँजा नि काटा...।

"बाँज का उत्तराखण्ड के जनजीवन में हमेषा से खास स्थान रहा है। उत्तराखण्ड के लोक गीतों में इसके गुणों का बखान किया गया है तथा बड़े प्यार से इसके पेड़ों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाने के बारे में बताया गया है।"5 बाँज के बारे में उत्तराखण्ड में यह भी मान्यता है कि इसके पेड़ों के निकट बहने वाला पानी बहुत शुद्ध और पाचन शक्ति वर्धक होता है। साथ ही ''पर्यावरण को समृद्ध रखने में बाँज के जंगलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बाँज की जड़ें वर्षा जल को अवषोषित करने व भूमिगत करने में मदद करती हैं, जिससे जलस्रोतों में सतत प्रवाह बना

रहता है। बाँज की पत्तियां जमीन में गिरकर दबती सड़ती रहती हैं, इससे मिट्टी की सबसे ऊपरी परत में ह्यूमस (प्राकृतिक खाद) का निर्माण होता रहता है। यह परत जमीन को उर्वरक बनाने के साथ ही धीरे-धीरे जल को भूमिगत करने में योगदान देती है। बाँज की विस्तृत क्षेत्र में फैली जड़े मिट्टी को जकड़े रखती हैं जिससे भू कटाव नहीं हो पाता।''6 इन कारणों से बाँज उत्तराखण्ड के लिए महत्वपूर्ण वृक्ष है इसकी महत्ता को देखते हुए ही पृथक उत्तराखण्ड बनने के बाद इसे राज्य वृक्ष घोषित किया गया।

इस झोड़े में लछिमा से ग्रामीण कहते हैं- सरकारी जंगल के इन बाँज के वृक्षों को तू मत काट। तू इनका विनाश करने पर क्यों तुली है ? यदि इन्हें काट दिया जायेगा तो इनमें लगे सुंदर बुराँश के पुष्पों को हम देवताओं को कैसे चढ़ायेंगे। इस गीत में पेड़ काटने वाली महिला को बाँज पुष्प चढाने के नाम पर डराया भी जा रहा है कि शायद वह भगवान के नाम से पेड़ काटना बंद कर दे। उससे ग्रामीण कहते हैं कि हैं कि जो प्रधान नीति-निर्माता है और हम सभी न्याय के लिए उसके पास जाते हैं तू उसकी बहु होकर भी बाँज काट रही है। यदि ये जंगल कट गये तो अकाल पड़ जायेगा, पानी के लिए त्राही-त्राही मच जायेगी जिससे हम सभी का विनाश हो जायेगा इसलिए तू इन्हें मत काट।

प्रायः पहाड़ों में संकरे और चढ़ाई-उतराई वाले मार्ग होने के कारण वाहनों के लिए सदैव खतरा बना रहता है। ऊपर से भूस्खलन की समस्या भी निरंतर बनी रहती है। अक्सर तेज गति वाले वाहन सीधे पहाड़ी से गिरकर नीचे चले जाते हैं जिससे आये दिन दुर्घटनायें होती रहती हैं। वाहन चालकों की गति को लेकर बहुत समय पूर्व एक झोड़ा बना था, यह झोड़ा आज भी उतनी प्रासंगिक है-

'कुन्दन डराइबरा रे रेस कमा करा रे रेस कमा करा.'

कुन्दन नाम के एक चालक के माध्यम से तीव्र गति से गाड़ी चलाने वाले सभी चालकों को इस लोकगीत (झोड़े) के द्वारा यह संदेश दिया जा रहा है कि वह तेज गति से वाहन न चलाएं। उनके इस जोखिम से गाड़ी में बैठने वाली सवारियों की जिंदगी भी सदैव खतरे में रहती है। इस लिए वह अपनी गति धीमी रखें ताकि सभी अपने गंतव्यों को सकुशल पहुँच सके।

इसी प्रकार की चेतना महंगाई को लेकर भी देखी गई है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी कोई दशक ऐसा नहीं रहा जब महंगाई की मार न पड़ी हो। इसी पर एक झोडे की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

रौ की लछीमा अस्सी गोरू नब्बे, भैंसा लछीमा, नौ बीसी बकारा

रौ की लछीमा मडुवा नि खानी, कैंछे लछीमा, ग्यों हैगी अकारा.।

इस झोड़े का भावार्थ यह है- रौ गाँव की लछीमा तेरे पास अस्सी गाय, नब्बे भैंस और नौ बीसी (180) बकरियाँ हैं। तू एक संपन्न परिवार से आई है इसलिए तू मडुवे की रोटी खाने को मना कर रही है। तू उन गेहूँ की रोटियाँ खाने की बात कर रही है जो बहुत महंगे हो गये हैं। इस महंगाई के जमाने में तेरे लिए गेहूँ की रोटी कहाँ से लायें ? इस गीत में पहाड़ की उपराऊ खेती की ओर संकेत किया गया है जहाँ अधिकांश खेती इसी प्रकार की होती है जिसमें मोटे अनाज ही उगाये जा सकते हैं। गेहूँ की पैदावार कम होने से लोग मडुवे की रोटी खाते हैं जो कि सेहत के लिए भी फायदेमंद होता है। लेकिन लछीमा नाम की महिला जो संपन्न घर से आई है वह गेहूँ की

रोटी का आग्रह करती है तो उसके प्रति उत्तर में यह गीत प्रचलन में आया।

''झोड़े समसामयिक समस्याओं से कभी भी अपने को अलग नहीं कर पाये हैं। राजनीतिक बदलाव के साथ 'झोड़ों' ने भी अपना रूख साफ किया है। समाज में अच्छे कार्यों को प्रोत्साहिन और गलत के लिए धिक्कारना झोड़ों की विशेषता रही है। राजनीति पर बहुत अच्छे कटाक्ष हैं। इंदिरा गांधी ने 1975 में जब आपातकाल की घोषणा की तो उसके बाद 1977 में चुनाव हुए उसमें आपातकाल के खिलाफ 'झोड़ा' बन बया-

इंदिरा त्यर चुनाव चिन्हा, गोरू दगड़ि बाछ्

इंदिरा त्यर गोरू ब्यै रौछ, संजय हैरौ ग्वा्व..।"7

उन चुनावों में कांग्रेस पार्टी का चुनाव चिन्ह् गाय और बछड़ा थे। आपातकाल के दौरान ही इंदिरा गाँधी के साथ उनके छोटे पुत्र संजय गाँधी भी चर्चा में थे। इस गीत के बोल इस प्रकार हैं- इंदिरा आपकी पार्टी का चुनाव चिन्ह् गाय और बछड़ा है। आपकी जो यह गाय ब्यायी है उसका ग्वाला संजय गाँधी है।

इस गीत में तत्कालीन सरकार पर व्यंग किया गया है। उस समय पार्टी में संजय गाँधी की भी बहुत चलती थी। तब कांग्रेस पार्टी का चुनाव चिन्ह् गाय और बछिया हुआ करता था। उस समय के लोगों ने गाय-बछयि की जोड़ी को इंदिरा गांधी और संजय गांधी से जोड़ कर इस प्रकार का झोड़ा बनाया था।

इसी प्रकार के एक अन्य झोडे में रोजी-रोटी की समस्या के कारण एक सुनार जिससे लोग अपने लिए महंगे से महंगे आभूषण बनवा कर ले जाते हैं, वह अपने परिवार के लिए दो जून की रोटी भी नहीं जुटा पा रहा है। उसकी इस विडंबना से व्यथित होकर एक लड़की अपने पिता से सुनार की दयनीय स्थिति पर संवाद कर रही है-

"रौली को सुनार हो बौज्यू भुक रै गो छ
रैणा दे चनर ऐ चेली त्यक के रौ छ
गवा की हँसुली हो बौज्यू वैल गड़ी छ
हाथै की मुनड़ी हो बौज्यू वैल बनै छै
रौली को सुनार हो बौज्यू भुक रै गो छ
रैणा दे चनर ऐ चेली त्यक के रौ छ।"8

उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में कुछ सुनार ऐसे भी हैं जो काम तो स्वर्णकार का करते हैं किन्तु उनकी माली हालत ठीक नहीं रहती है। ऐसा एक सुनार जो दूसरों के लिए सुन्दर नक्कासी करके आभूषण बनाता है, वह अपने लिए दो जून की रोटी भी नहीं जुटा पा रहा है। उपर्युक्त झोड़े में एक बेटी अपने पिता से कह रही है रौली (एक स्थान) का सुनार जो दूसरों के जेवर बनाता है उसकी विडंबना तो देखिए अपने परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पा रहा है। उसके पास जो भी जाता है वह उस के लिए आभूषण बनाता है फिर भी उसकी स्थिति इतनी दयनीय क्यों है ? उसका पिता अपनी पुत्री चनर से कहा रहा है कि वह क्यों चिंता कर रही है ? यदि सुनार का परिवार भूखा भी रहता है तो वह क्या कर सकता है ? इसलिए वह व्यर्थ की चिंता न करे। इस पर बेटी उत्तर देते हुए कहती है उसके गले में जो सुन्दर हँसुली है उसकी गड़ाई उसी सुनार ने की है। उसके हाथ की सुन्दर अंगूठी भी उसी ने बनाई है। जिस सुनार ने उसके लिए इतने सुन्दर आभूषण बनाये वह उसे कैसे भूल सकती है ? वह बहुत कुशल कारीगर होते हुए भी गरीबी की जिंदगी जी रहा है, यह अच्छी बात नहीं है। यहाँ पर एक युवती का परहित भाव वाली चेतना जाग्रत हो रही है। समाज चिंतन का यह एक बहुत अच्छा उदाहरण है।

समाज में आज भी कुप्रथाएँ, अन्ध-विश्वास, सामाजिक बुराईयाँ, बाल विवाह, बेमेल विवाह

आदि प्रचलित हैं। लोकगीतों की विशेषता है कि उनमें इनका चित्रण किया जाता है। एक अनमेल विवाह की विडम्बना को इस झोड़े के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

ओ हो तली दुकाना ग्वव मिसरी, मली दुकाना च्यूड़ा
अय हय के करूँ सासु चुड़ि चरेवा, रेवती बौज्यू बुड़ा...।

उपर्युक्त लोकगीत (झोड़े) का भावार्थ इस प्रकार है- सास अपनी बहु से कह रही है कि नीचे वाली दुकान से गोले-मिसरी तथा ऊपर वाली दुकान से च्यूड़े लेकर खाले और अच्छी-अच्छी चूड़ियों तथा चरेव से अपना श्रृंगार कर। इस पर बहु अपनी सास से कह री है चूड़ी और चरेव पहन कर वह क्या करेगी ? उसके रेवती के पिता तो बूढे हैं, उस बूढ़े आदमी के लिए क्या सजना-संवरना? यहाँ पर बेमेल विवाह से निराश युवती बहुत दुःखी है और उसी दुःख के कारण वह श्रृंगार नहीं करना चाहती है। क्योंकि उसे लगता है कि वह एक बूढ़े आदमी के लिए सज-संवर कर क्या करेगी ?

निष्कर्ष

झोड़े जैसे लोक नृत्य-गीत भले ही आज ग्राम्य प्रचलन से कम हो रहे हों लेकिन उनका महत्व एवं उनके प्रति लोगों का प्रेम आज भी जस का तस बना हुआ है। पर्वतीय क्षेत्रों में गाँवों से पलायन एवं अत्याधुनिक जन-संचार के कारण लोगों के सीमित दायरे में बधने से झोड़ा गायन अब कम होता है किन्तु पलायन के बावजूद उत्तराखण्ड के साथ-साथ यहाँ के प्रवासी वर्ग में आज भी झोड़े के प्रति स्नहे एवं लगाव बना हुआ है। झोड़े आज भी किसी भी परिस्थिति में चेतना के वाहक हैं। ये जहाँ एक ओर भावनाओं और अभिव्यक्ति के माध्यम से हलचल पैदा करने की शक्ति रखते हैं वहीं दूसरी ओर कुमाउनी संस्कृति को भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सहजा से पहुँचाते हैं। यह सामूहिक सहभागिता और ग्रामीण जीवन को संगठित करने के माध्यम भी हैं। झोड़े नई-पुरानी पीढ़ी, स्त्री-पुरुष एवं जाति-वर्ग के भेद को मिटाने का कार्य भी करते हैं। इस लिए आज भी झोड़ों की प्रासंगिकता बनी हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पोखरिया, प्रो. देव सिंह, कुमाउनी लोकगीत, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृष्ठ 21.
2. पेटशाली, जुगल किशोर, कुमाँउनी लोकगीत, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली-110092, वर्ष- 2012, पृष्ठ 133
3. पोखरिया, प्रो. देव सिंह, कुमाउनी लोकगीत प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृष्ठ 137.
4. बिष्ट, राजेन्द्र सिंह 'दोर्याल', प्रतिपक्ष संवाद, अप्रैल, 2015, पृष्ठ- 34.
5. यूनिवार्ता, 1 जून, 2016 (इंटरनेट)
6. गढ़ चेतना डाटकाम, 19 सितम्बर, 2016
7. बिष्ट, राजेन्द्र सिंह 'दोर्याल', लेख, प्रतिपक्ष संवाद, अप्रैल, 2015, पृष्ठ 34.
8. उत्तराखण्ड के लोक नृत्य झोड़ा, चाँचरी, छपेली और छोलिया, युगमंच नैनीताल, वर्ष- 2006, पृष्ठ-42
9. ग्रामीण, लोक कलाकार, साहित्यकार एवं सांस्कृतिक दलों द्वारा जानकारी।